तपागच्छ — बृहद् पौषालिक शाखा

शिवप्रसाद

तपागच्छ के प्रवर्तक आचार्य जगच्चन्द्रसूरि के कनिष्ठ शिष्य विजयचन्द्रसूरि से तपागच्छ की बृहद् पौषालिक शाखा अस्तित्व में आयी। प्राप्त विवरणानुसार आचार्य जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य विजयचन्द्रसूरि १२ वर्षों तक स्तम्भतीर्थ (खंभात) की उस पौषधशाला में रहे, जहाँ उनके गुरु ने ठहरने का निषेध किया था। इस अवधि में उनके ज्येष्ठ गुरुभ्राता देवेन्द्रसूरि ने मालवा प्रान्त में विचरण किया, वहाँ से जब वे स्तम्भतीर्थ लौटे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि विजयचन्द्रसूरि अभी तक उसी पौषधशाला में हैं तथा उन्होंने साधुजीवन में पालन करने वाले कई कठोर नियमों को पर्याप्त शिथिल भी कर दिया है। इसी कारण वे स्तम्भतीर्थ की दूसरी पौषधशाला, जो अपेक्षाकृत कुछ छोटी थी, में ठहरे। इस प्रकार जगच्चन्द्रसूरि के दो शिष्य एक ही नगर में एक ही समय में दो अलग-अलग स्थानों पर रहे। बड़ी पौषधशाला में ठहरने के कारण विजयचन्द्रसूरि का शिष्यपरिवार बृहद्पौषालिक एवं देवेन्द्रसूरि का शिष्यसमुदाय लघुपौषालिक कहलाया[१]। साहित्यिक और अभिलेखीय दोनों ही साक्ष्यों में इस गच्छ के कई नाम मिलते हैं जैसे—बृहद्तपागच्छ, वृद्धतपागच्छ, बृहद्पौषालिक, वृद्धपौषालिक, बृहद्पौषधषालिक आदि। तपागच्छ की इस शाखा में आचार्य क्षेमकीर्ति, आचार्य रत्नाकरसूरि, जयतिलकसूरि, रत्नसिंहसूरि, जिनरत्नसूरि, उदयवल्लभसूरि, ज्ञानसागरसूरि, उदयसागरसूरि, धनरत्नसूरि, देवरत्नसूरि, देवसुन्दरसूरि, नयसुन्दरगणि आदि कई विद्वान् मुनिजन हो चुके हैं।

तपागच्छ की इस शाखा के इतिहास के अध्ययन के लिये साहित्यिक साक्ष्यों के अन्तर्गत इससे सम्बद्ध मुनिजनों द्वारा रचित कृतियों की प्रशस्तियाँ, उनके द्वारा प्रतिलिपि किये गये ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ एवं वि॰ सं॰ की १७वीं शताब्दी में नयसुन्दरगणि द्वारा रचित एक पट्टावली[२] भी है। इसके अलावा इस शाखा के मुनिजनों द्वारा समय-समय पर प्रतिष्ठापित बड़ी संख्या में सलेख जिनप्रतिमायें भी प्राप्त हुई हैं जो वि॰ सं॰ १४५९ से लेकर वि॰ सं॰ १७८१ तक की हैं। प्रस्तुत निबन्ध में उक्त सभी साक्ष्यों के आधार पर इस शाखा के इतिहास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

इस शाखा के आद्यपुरुष विजयचन्द्रसूरि द्वारा रचित कोई कृति नहीं मिलती और न ही इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख ही प्राप्त होता है, तथापि अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता देवेन्द्रसूरि द्वारा रचित कुछ कृतियों की रचना में सहयोग अवश्य प्रदान किया था[३]। इनके शिष्यों के रूप में वज्रसेन, पद्मचन्द्र और क्षेमकीर्ति का नाम मिलता है। क्षेमकीर्ति द्वारा रचित ४२००० श्लोक परिमाण की **बृहद्कल्पसूत्रवृत्ति** प्राप्त होती है जो वि॰ सं॰ १३३२/ई॰ सं॰ १२७६ में रची गयी है। इसकी प्रशस्ति[४] में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा दी है, जो इस प्रकार है:

धनेश्वरसूरि
|
भुवनचन्द्रसूरि
|
देवभद्रगणि
|

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

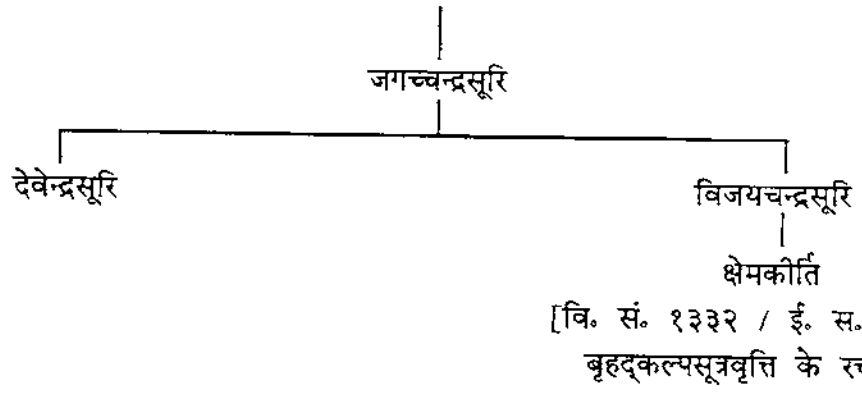

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बृहद् पौषालिक शाखा की एक पट्टावली[५] प्राप्त होती है। इसमें रचनाकार द्वारा विजयचन्द्रसूरि से लेकर धनरत्नसूरि एवं उनके शिष्यों तक की दी गयी गुरु-परम्परा इस प्रकार है :

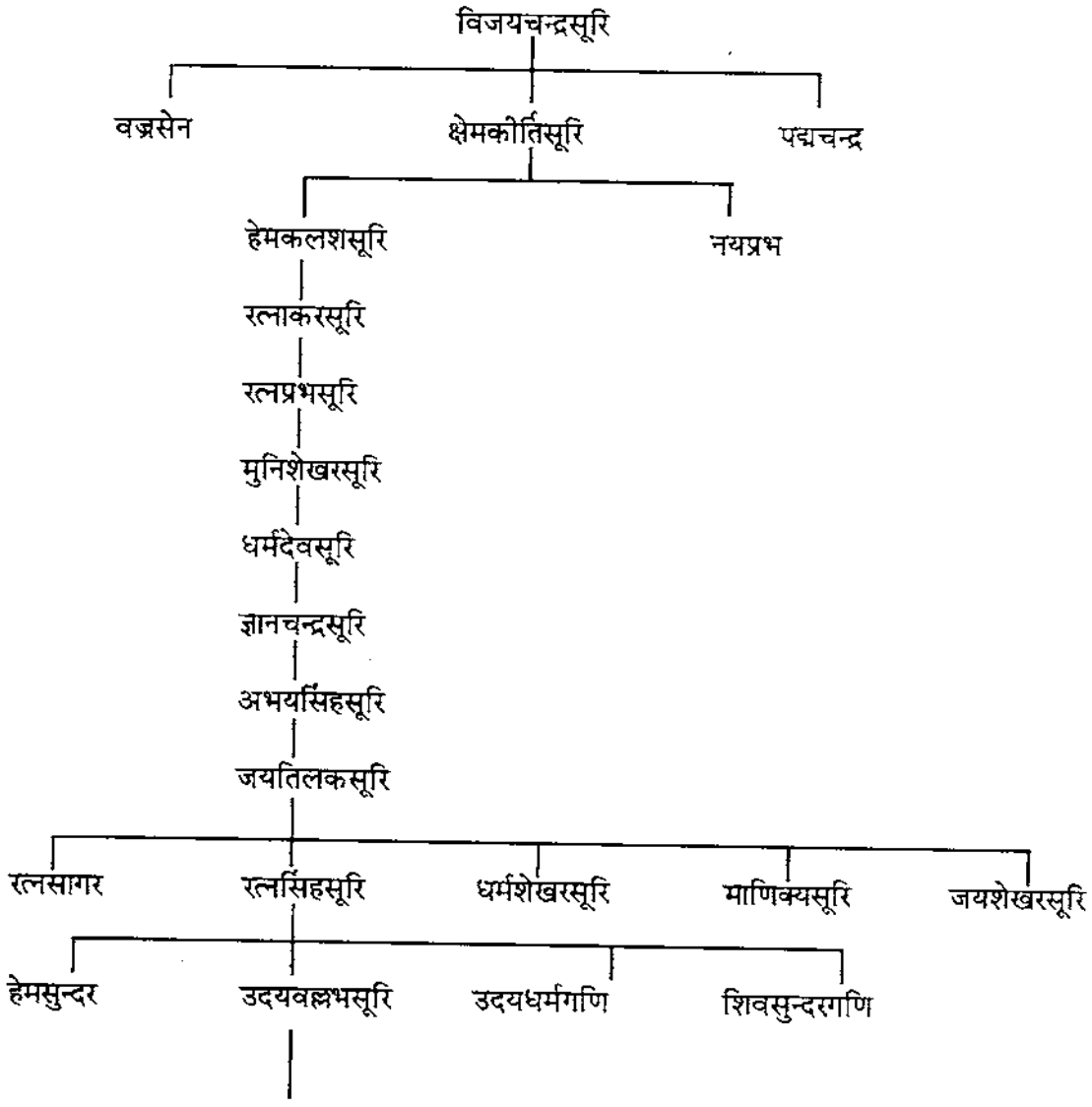

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

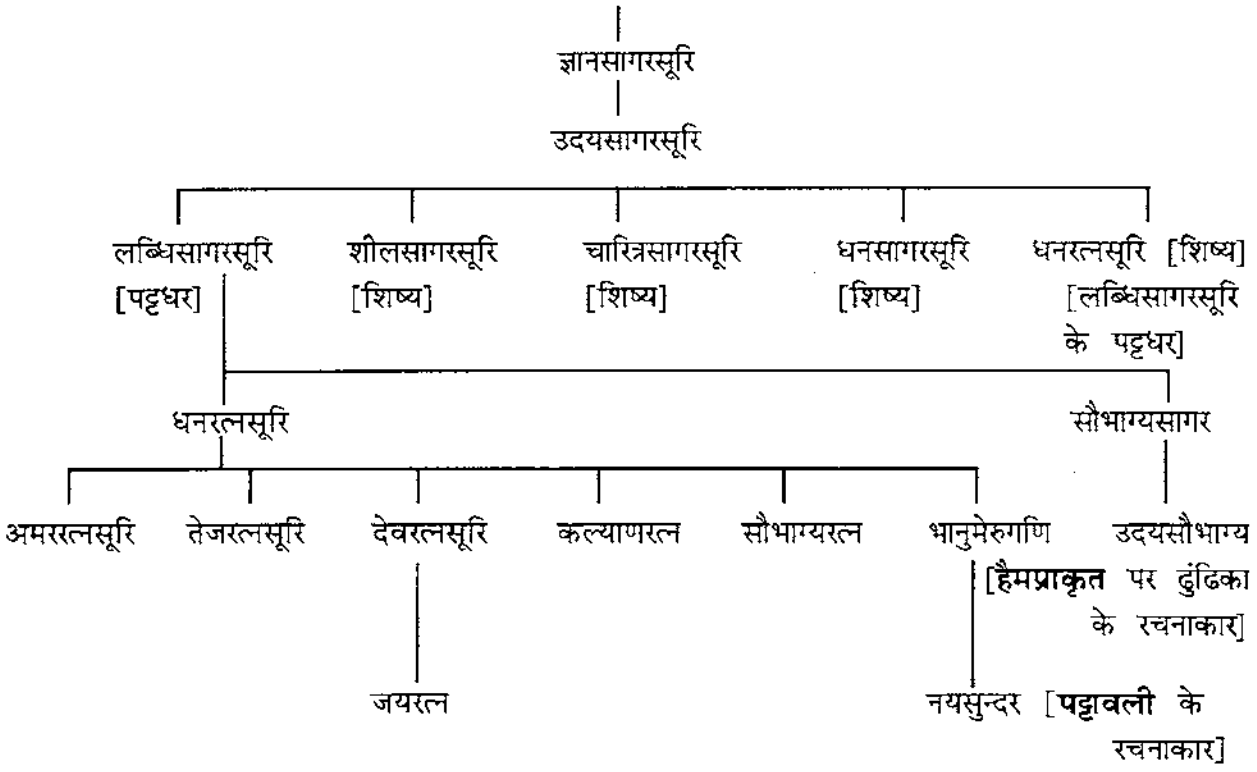

क्षेमकीर्ति के एक शिष्य हेमकलशसूरि हुए, जिनके द्वारा रचित कोई कृति नहीं मिलती । आचार्य देवेन्द्रसूरि द्वारा रचित **धर्मरत्नप्रकरणटीका**[६] (रचनाकाल वि॰ सं॰ १३०४-२३) के संशोधक के रूप में विद्यानन्द और धर्मकीर्ति के साथ हेमकलश का भी नाम मिलता है, जिन्हें समसामयिकता, नामसाम्य आदि के आधार पर बृहद् तपागच्छीय उक्त हेमकलशसूरि से समीकृत किया जा सकता है । क्षेमकीर्ति के दूसरे शिष्य नयप्रभ का उक्त पट्टावली को छोड़कर अन्यत्र कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

हेमकलशसूरि के शिष्य रत्नाकरसूरि एक प्रभावक आचार्य थे । इन्हीं के समय से इस शाखा का एक अन्य नाम **रत्नाकरगच्छ** भी पड़ गया । श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाईने[७] **रत्नाकरपंचविंशतिका** के कर्त्ता रत्नाकरसूरि और बृहद्तपागच्छीय रत्नाकरसूरि को एक ही व्यक्ति होने की संभावना प्रकट की है, किन्तु श्री हीरालाल रसिकलाल कापडिया[८] **अभिधानराजेन्द्रकोश** का उद्धरण देते हुए **रत्नाकरपंचविंशतिका** के रचनाकार रत्नाकरसूरिको देवप्रभसूरि का शिष्य बतलाते हुए उक्त कृति को वि॰ सं॰ १३०७ में रचित बतलाते हैं। यदि श्री कापडिया के उक्त मत को स्वीकार करें तो **रत्नाकरपंचविंशतिका** के कर्त्ता बृहद्तपागच्छीय रत्नाकरसूरि नहीं हो सकते क्योंकि उनका समय विक्रमसम्वत् की चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध सुनिश्चित् है[९]।

रत्नाकरसूरि के पट्टधर रत्नप्रभसूरि और रत्नप्रभसूरि के पट्टधर मुनिशेखरसूरि का उक्त पट्टावली को छोड़कर अन्यत्र कोई उल्लेख नहीं मिलता, प्रायः यही बात धर्मदेवसूरि, ज्ञानचन्द्रसूरि और उनके पट्टधर अभयसिंहसूरि के बारे में कही जा सकती है । अभयसिंहसूरि के पट्टधर जयतिलकसूरि हुए । इनके द्वारा रचित **आबूचैत्यप्रवाडी**[१०] [रचनाकाल वि॰ सं॰ १४५६ के आसपास] नामक कृति पायी जाती है । इनके उपदेश से **अनुयोगद्वारचूर्णी**[११] और **कुमारपालप्रतिबोध**[१२] की प्रतिलिपि तैयार की गयी ।

जयतिलकसूरि के शिष्यों में रत्नसागरसूरि, धर्मशेखरसूरि, रत्नसिंहसूरि, जयशेखरसूरि और माणिक्यसूरि का नाम मिलता है । रत्नसागरसूरि से बृहद्पौषालिक शाखा / रत्नाकरगच्छ की भृगुकच्छशाखा अस्तित्व में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयी[१३]। रत्नसिंहसूरि की शिष्यपरम्परा बृहद्तपागच्छ की मुख्य शाखा के रूप में आगे बढ़ी, जब कि जयशेखरसूरि के शिष्य जिनरत्नसूरि[१४] की शिष्यसन्तति का स्वतंत्र रूप से विकास हुआ। जयतिलकसूरि के दो अन्य शिष्यों—धर्मशेखरसूरि और माणिक्यसूरि की शिष्य-परम्परा आगे नहीं चली।

रत्नसिंहसूरि तपागच्छ की बृहद्पौषालिक शाखा के प्रभावक आचार्य थे। वि. सं. १४५९ से लेकर वि. सं. १५१८ तक के पचास से अधिक प्रतिमालेखों में प्रतिमा-प्रतिष्ठापक के रूप में इनका नाम मिलता है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

वि. सं. १४५९	ज्येष्ठ वदि ९ शुक्रवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८१	वैशाख सुदि ३	(दो प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८१	माघ सुदि ५ बुधवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८१	माघ सुदि ९ शनिवार	(दो प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८५	वैशाख सुदि ७ सोमवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८६	वैशाख सुदि १५ सोमवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८७	माघ वदि ८ सोमवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८८	वैशाख सुदि १० गुरुवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८९	पौष वदि १० गुरुवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४८९	पौष वदि १२ शुक्रवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४९३	तिथिविहीन	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४९६	ज्येष्ठ सुदि १० बुधवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १४९९	फाल्गुन वदि ६	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५००	तिथिविहीन	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५००	वैशाख सुदि ५	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५००	माघ सुदि १३ गुरुवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०३	आषाढ़ वदि ७ सोमवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०३	माघ वदि २ शुक्रवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०३	फाल्गुन वदि २ बुधवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०४	ज्येष्ठ सुदि १० सोमवार	(दो प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०५	वैशाख	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०६	माघ सुदि रविवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०७	वैशाख वदि २ गुरुवार	(एक प्रतिमालेख)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि. सं. १५०७	ज्येष्ठ सुदि २ सोमवार	(दो प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०७	ज्येष्ठ सुदि १० सोमवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०८	आषाढ़ सुदि २ सोमवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०८	आषाढ़ सुदि ९ शुक्रवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०९	ज्येष्ठ वदि ९ गुरुवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०९	आषाढ़ सुदि ९ सोमवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०९	पौष वदि १० गुरुवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०९	माघ सुदि ५ शुक्रवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५०९	फाल्गुन सुदि ३ गुरुवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१०	वैशाख वदि ५ सोमवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१०	ज्येष्ठ सुदि ३ गुरुवार	(तीन प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१०	माघ सुदि १०	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५११	ज्येष्ठ वदि ९ शनिवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५११	पौष वदि ६ गुरुवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१३	वैशाख सुदि ५ गुरुवार	(दो प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१४	माघ सुदि २ शुक्रवार	(तीन प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१५	ज्येष्ठ वदि १ शुक्रवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१६	आषाढ़ सुदि ९ शुक्रवार	(एक प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१७	माघ सुदि ४ शुक्रवार	(दो प्रतिमालेख)
वि. सं. १५१८	माघ सुदि १० मंगलवार	(एक प्रतिमालेख)

वि. सं. १५०१ में **भवभावनासूत्रबालावबोध**-एवं **नेमीश्वरचरित्र** के कर्त्ता माणिक्यसुन्दरगणि[१५] रत्नसिंहसूरि के शिष्य थे ।

वि. सं. १५१४ में लिखी गयी **उत्तराध्ययनसूत्रअवचूरि** की प्रशस्ति में प्रतिलिपिकार उदयमंडन[१६] ने स्वयं को रत्नसिंहसूरि का शिष्य कहा है ।

वि. सं. १५०७ में **वाक्यप्रकाशऔक्तिक** के रचनाकार उदयधर्म भी रत्नसिंहसूरि[१७] के ही शिष्य थे ।

वि. सं. १५०९ में **रत्नचूड़ामणिरास** एवं वि. सं. १५१६ में **जम्बूरास** के कर्त्ता ने अपना नाम उल्लिखित न करते हुए स्वयं को मात्र रत्नसिंहसूरिशिष्य[१८] कहा है ।

रत्नसिंहसूरिशिष्य द्वारा रचित **गिरनारतीर्थमाला** नामक एक कृति प्राप्त होती है । इसमें स्तम्भतीर्थ के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेष्ठी शाणराज द्वारा गिरनार पर **इन्द्रनीलतिलक प्रासाद**[१९] नामक जिनालय बनवाने की बात भी कही गयी है ।

शाणराज द्वारा यहाँ विमलनाथ के परिकर का निर्माण करने का उल्लेख वि॰ सं॰ १५२३ के एक शिलालेख[२०] में प्राप्त होता है ।

आचार्य विजयधर्मसूरि ने इसकी वाचना दी है, जो इस प्रकार है :

"संवत् १५२३ वर्षे वैशाख सुदि १३गुरौ श्रीवृद्धतपापक्षे श्रीगच्छनायक भट्टारक श्रीरत्नसिंहसूरीणां तथा भट्टारक उदयवल्लभसूरीणां [च] उपदेशेन । ब्य॰ श्रीशाणा सं॰ भूभवप्रमुखश्रीसंघेन श्रीविमलनाथपरिकरः कारितः प्रतिष्ठिता गच्छाधीशपूज्यश्रीज्ञानसागरसूरिभिः ॥"

यह शिलालेख आज उपलब्ध नहीं है ।

शाणराज की गिरनार प्रशस्ति[२१] की प्रारंभिक पंक्तियाँ ही वहाँ से प्राप्त हुई है शेष अंश नहीं मिलता किन्तु सद्भाग्य से इसका अधिकांश भाग बृहद्पौषालिकपट्टावली में प्राप्त हो जाता है ।

महीवालकथा, कुमारपालचरित, शीलदूतकाव्य, आचारोपदेश आदि के रचनाकार एवं वि॰ सं॰ १५२३ तक विभिन्न जिनप्रतिमाओं के प्रतिष्ठापक चारित्रसुन्दरगणि[२२] तथा वि॰ सं॰ १४९७ में **संग्रहणीबालावबोध** और वि॰ सं॰ १५२९ में **क्षेत्रसमासबालावबोध** के कर्त्ता दयासिंहगणि[२३] भी इन्हीं रत्नसिंहसूरि के शिष्य थे।

वि॰ सं॰ १५१६ में लिखी गयी **उत्तराध्ययनसूत्र** की एक प्रति से ज्ञात होता है कि इसे रत्नसिंहसूरि की शिष्या धर्मलक्ष्मी महत्तरा[२४] के पठनार्थ लिखा गया था ।

रत्नसिंहसूरि के शिष्य एवं पट्टधर उदयवल्लभसूरि[२५] हुए जिनके द्वारा वि॰ सं॰ १५२० के लगभग रचित **क्षेत्रसमासबालावबोध** नामक कृति प्राप्त होती है । वि॰ सं॰ १५१९-२१ तक के कुछ प्रतिमालेखों में प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में इनका नाम मिलता है । उदयवल्लभसूरि की दो शिष्याओं रत्नचूलामहत्तरा एवं प्रवर्तिनी विवेकश्री का उल्लेख मिलता है[२६] । इनके पट्टधर ज्ञानसागरसूरि हुए जिनके द्वारा वि॰ सं॰ १५१७ में रचित **विमलनाथचरित्र**[२७] और अन्य कृतियाँ प्राप्त होती हैं । इन्हीं के लेहिया लौंका ने वि॰ सं॰ १५२८ में अपने नाम से लौंकागच्छ का प्रवर्तन किया जिससे श्वेताम्बर सम्प्रदाय मूर्तिपूजक और अमूर्तिपूजक-दो भागों में विभक्त हो गया । वि॰ सं॰ १५२२-१५५३ तक के जिनप्रतिमाओं में प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में इनका नाम मिलता है[२८] ।

ज्ञानसागर के पट्टधर उदयसागर हुए । इनके द्वारा प्रतिष्ठापित वि॰ सं॰ १५३२-१५७३ तक की जिनप्रतिमायें प्राप्त हुई हैं[२९] ।

उदयसागर के प्रशिष्य एवं शीलसागर के शिष्य डूंगरकवि द्वारा रचित **माइबावनी** नामक कृति प्राप्त होती है[३०] । उदयसागर के पट्टधर लब्धिसागर हुए जिनके द्वारा वि॰ सं॰ १५५६ में रचित **ध्वजकुमारचौपाई** और **श्रीपालकथा** (वि॰ सं॰ १५५७) आदि कृतियाँ मिलती हैं[३१] । वि॰ सं॰ १५५१ से १५८८ तक के प्रतिमालेखों में प्रतिमा प्रतिष्ठापक के रूप में इनका नाम मिलता है[३२] ।

लब्धिसागरसूरि के दो शिष्यों—धनरत्नसूरि और सौभाग्यसागरसूरि के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। सौभाग्यसागर के शिष्य उदयसौभाग्य द्वारा वि॰ सं॰ १५९१ में रचित **हेमप्राकृतढुंढिका** नामक कृति प्राप्त होती[३३] है । इनके एक शिष्य द्वारा रचित **चम्पकमालारास** (वि॰ सं॰ १५७८) नामक कृति प्राप्त होती है । इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकार ने स्वयं अपना नाम न देते हुए मात्र सौभाग्यसागरसूरिशिष्य[३४] कहा है ।

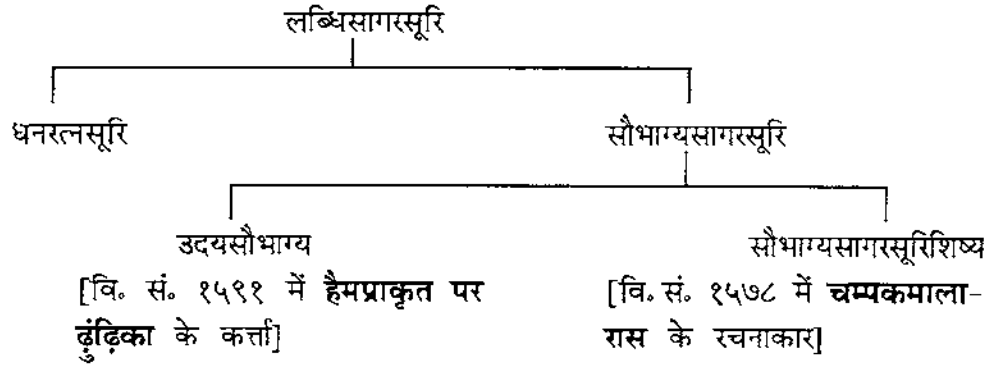

लब्धिसागरसूरि के पट्टधर धनरत्नसूरि का विशाल शिष्य परिवार था जिनमें अमररत्नसूरि, तेजरत्नसूरि, देवरत्नसूरि, भानुमेरुगणि, उदयधर्म, भानुमंदिर आदि उल्लेखनीय हैं । धनरत्नसूरि द्वारा रचित कोई कृति नहीं मिलती, यही बात इनके पट्टधर अमररत्नसूरि के बारे में कही जा सकती है । अमररत्नसूरि के पट्टधर उनके गुरुभ्राता तेजरत्नसूरि हुए जिनके शिष्य देवसुन्दर का नाम वि॰ सं॰ १६३७ के प्रशस्तिलेख[३५] में प्राप्त होता है । तेजरत्नसूरि के दूसरे शिष्य लावण्यरत्न हुए जिनकी परम्परा में हुए सुखसुन्दर ने वि॰ सं॰ १७३९ में **कल्पसूत्रसुबोधिका** की प्रतिलिपि की[३६] । इसकी प्रशस्ति[३७] में इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा दी है, जो इस प्रकार है :

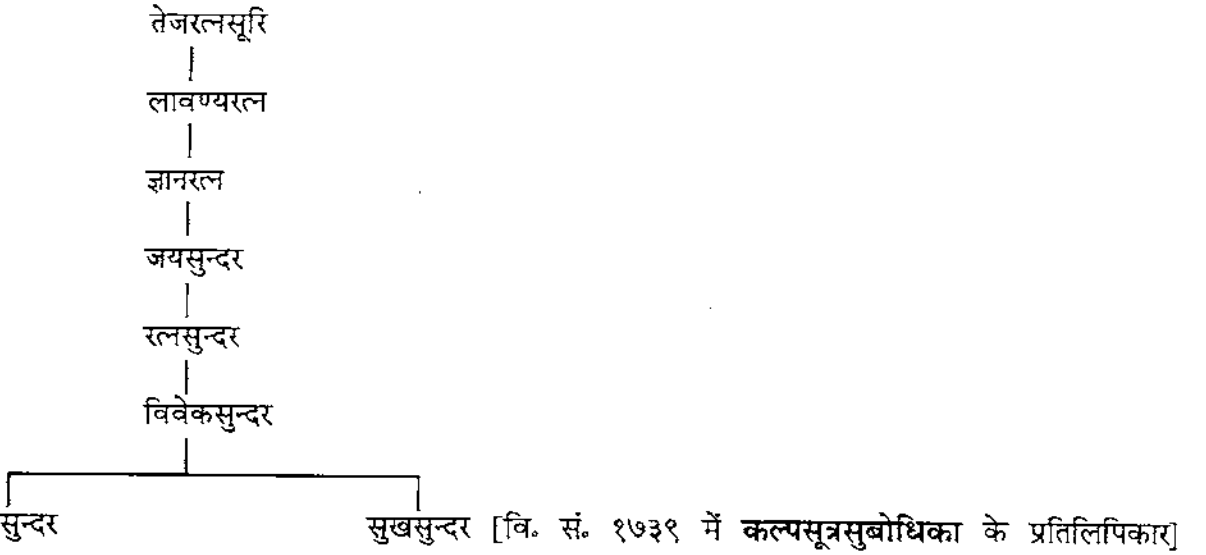

चूँकि उक्त प्रशस्ति में प्रतिलिपिकार ने अपनी लम्बी गुरु-परम्परा दी है, अतः इस शाखा के इतिहास के अध्ययन में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है ।

अमररत्नसूरि के दूसरे पट्टधर देवरत्नसूरि भी इन्ही के गुरुभ्राता थे । इनके शिष्य जयरत्न द्वारा रचित कोई कृति नहीं मिलती, किन्तु इनकी परम्परा में हुए कनकसुन्दर द्वारा वि॰ सं॰ १६६२-१७०३ के मध्य रचित विभिन्न रचनायें मिलती हैं[३८], जो इस प्रकार हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. **कर्पूरमंजरीरास** [वि॰ सं॰ १६६२]

२. **गुणधर्मकनकवतीप्रबन्ध**

३. **सगालसाहरास** [वि॰ सं॰ १६६७]

४. **देवदत्तरास**

५. **रश्यसेनरास** [वि॰ सं॰ १६७३]

६. **जिनपालितसज्झाय**

७. **दशवैकालिकसूत्रबालावबोध**

८. **ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्तवन**[३९] (वि॰ सं॰ १७०३)

अपनी कृतियों में रचनाकार द्वारा दी गयी गुरु-परम्परा इस प्रकार है :

अमररत्नसूरि
|
देवरत्नसूरि
|
जयरत्नसूरि
|
विद्यारत्न
|
कनकसुन्दरगणि [वि॰ सं॰ १६६२-१७०३ के मध्य विभिन्न कृतियों के रचनाकार]

जयरत्न के दूसरे शिष्य भुवनकीर्ति हुए जिनके पट्टधर रत्नकीर्ति ने[४०] वि॰ सं॰ १७२७ में **स्त्रीचरित्ररास** की प्रतिलिपि की। रत्नकीर्ति के शिष्य सुमतिविजय द्वारा वि॰ सं॰ १७४९ में रचित **रत्नकीर्तिसूरिचउपई**[४१] नामक कृति प्राप्त होती है। सुमतिविजय द्वारा रचित **रात्रिभोजनरास** नामक एक अन्य कृति भी प्राप्त होती है।

रत्नकीर्तिसूरिचउपइ में रचनाकार ने अपने अन्य गुरु भ्राताओं—रामविजय, हेमविजय और गुणविजय का भी नाम दिया[४२] है। वि॰ सं॰ १७३४ में रत्नकीर्तिसूरि के निधन के पश्चात् गुणविजय गुणसागरसूरि के नाम से उनके पट्टधर बने। इनके द्वारा रचित न तो कोई कृति मिलती है और न ही किसी प्रतिमालेख में नाम मिलता है। चूँकि वि॰ सं॰ १७४९ के पश्चात् इस गच्छ से सम्बन्धित कोई उल्लेख नहीं मिलता अत: अभी यही इस गच्छ का अंतिम साक्ष्य कहा जा सकता है।

भुवनकीर्ति
|
रत्नकीर्ति [वि॰ सं॰ १७२७ में **स्त्रीचरित्ररास** के प्रतिलिपिकार]
|
सुमतिविजय रामविजय हेमविजय गुणविजय अपरनाम गुणसागरसूरि
|
वि॰ सं॰ १७४९ में **रत्नकीर्तिसूरि-चउपइ** एवं **रात्रिभोजनरास** के कर्त्ता

वि॰ सं॰ १७०७-३४ के मध्य रचित **भगवतीसूत्रबालावबोध**[४३] के कर्त्ता पद्मसुन्दर भी इसी शाखा के थे। अपनी कृति के अन्त में उन्होंने गुरुपरम्परा दी है, जो इस प्रकार है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

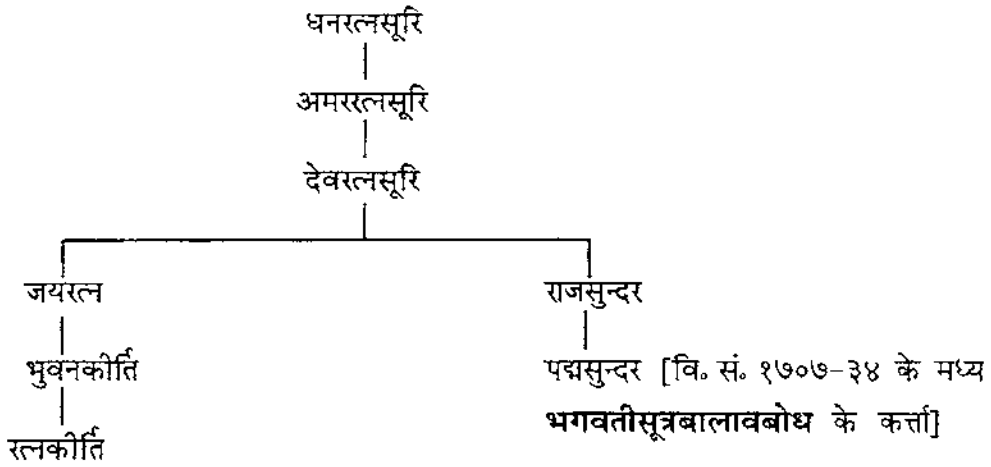

चतुर्विंशतिजिनस्तुति के रचनाकार नयसिंहगणि[४४] भी इसी गच्छ के थे । अपनी कृति की प्रशस्ति में उन्होंने अपने गुरु-परम्परा की लम्बी तालिका दी है, जो इस प्रकार है :

रत्नसिंहसूरि
उदयवल्लभसूरि
ज्ञानसागरसूरि
उदयसागरसूरि
लब्धिसागरसूरि
धनरत्नसूरि
मुनिसिंहगणि
नयसिंहगणि [वि. सं. १६२५ के आस-पास **चतुर्विंशतिजिनस्तुति** के रचनाकार]

नयसिंहसूरि द्वारा रचित अन्य कोई कृति नहीं मिलती ।

धनरत्नसूरि के एक शिष्य भानुमेरुगणि हुए, जिनके द्वारा रचित कोई कृति नहीं मिलती, किन्तु इनके शिष्य नयसुन्दर[४५] अपने समय के प्रसिद्ध रचनाकार थे । इनके द्वारा रचित कृतियाँ इस प्रकार हैं :

१. **रूपरत्नमाला**
२. **शत्रुंजयोद्धारस्तवन**
३. **नवसिद्धिस्तवन**
४. **सीमंधरवीनतीस्तवन**
५. **शत्रुंजयउद्धार** [वि. सं. १६३८ / ई. स. १५७२]
६. **स्थूलिभद्रएकवीसो**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. **जुहारमित्रसज्झाय**

८. **गिरनारतीर्थोद्धाररास**

९. **यशोधरनृपचौपाई** [वि॰ सं॰ १६१८ / ई॰ स॰ १५५२]

१०. **रूपचन्द्रकंवररास** [वि॰ सं॰ १६३७ / ई॰ स॰ १५७१]

११. **गिरनारतीर्थोद्धारप्रबन्ध**

१२. **प्रभावती (उदयन)रास** [वि॰ सं॰ १६४० / ई॰ स॰ १५७४]

१३. **सुरसुन्दरीरास** [वि॰ सं॰ १६४६ / ई॰ स॰ १५९०]

१४. **नलदमयन्तीचरित्र** [वि॰ सं॰ १६६५ / ई॰ स॰ १६०९]

१५. **शीलशिक्षारास** [वि॰ सं॰ १६६९ / ई॰ स॰ १६१३]

१६. **शंखेश्वरपार्श्वस्तवन**

१७. **पार्श्वनाथस्तवन**

१८. **आत्मबोधकुलक**

१९. **सारस्वतव्याकरणवृत्ति**

२०. **बृहद्पोषालिकपट्टावली**

नयसुन्दर की शिष्या साध्वी हेमश्री[४६] द्वारा रचित **कनकावतीआख्यान** [रचनाकाल वि॰ सं॰ १६४४/ ई॰ स॰ १५८८] और **मौनएकादशीस्तुतिथोयसंग्रह** नामक कृतियाँ मिलती हैं ।

कर्मविवरणरास के रचनाकार लावण्यदेव[४७] भी तपागच्छ की इसी शाखा से सम्बद्ध थे । अपनी कृति के अन्त में उन्होंने प्रशस्ति के अन्तर्गत गुरु-परम्परा दी है, जो इस प्रकार है :

धनरत्नसूरि
|
उदयधर्म
|
जयदेव
|
लावण्यदेव [**कर्मविवरणरास** के कर्त्ता]

धनरत्नसूरि के एक शिष्य भानुमंदिर हुए, जिनके द्वारा रचित कोई कृति नहीं मिलती, किन्तु वि॰ सं॰ १६१२ / ई॰ स॰ १५५६ में रचित **देवकुमारचरित्र** के कर्त्ता ने स्वयं को भानुमंदिरशिष्य[४८] के रूप में सूचित किया है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनरत्नसूरि
|
भानुमंदिर
|
भानुमंदिरशिष्य [वि॰ सं॰ १६१२ / ई॰ स॰ १५५६ में **देवकुमारचरित्र** के कर्त्ता]

मुनि कांतिसागर[४९] के अनुसार गलियाकोट स्थित संभवनाथजिनालय में ही प्रतिष्ठापित एक जिनप्रतिमा पर वि॰ सं॰ १७८१ का एक लेख उत्कीर्ण है, जिसमें देवसुन्दरसूरि की शिष्य-परम्परा की एक पट्टावली दी गयी है, जो इस प्रकार है :

धनरत्नसूरि
|
अमररत्नसूरि
|
तेजरत्नसूरि
|
देवसुन्दरसूरि
|
विजयसुन्दरसूरि
|
लब्धिचन्द्रसूरि
|
विनयचन्द्रसूरि
|
धरचन्द्रसूरि
|
उदयचन्द्रसूरि
|
जयचन्द्रसूरि

इस प्रकार विक्रम सम्वत् की १८वीं शताब्दी के अंतिम चरण तक तपागच्छ की बृहद्पौषालिक शाखा का अस्तित्व सिद्ध होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपागच्छ-बृहद्पौषालिकशाखा के मुनिजनों की गुरु-परम्परा

जगच्चन्द्रसूरि [तपागच्छ के आदिपुरुष]

- देवेन्द्रसूरि
  - लघुपौषालिकशाखा
- विजयचन्द्रसूरि (बृहद्पौषालिकशाखा के प्रवर्तक)
  - क्षेमकीर्ति (वि॰ सं॰ १३३२ / ई॰ स॰ १२७६ में **बृहद्कल्पसूत्रवृत्ति** के रचनाकार)
  - हेमकलशसूरि
  - रत्नाकरसूरि (इनके उपदेश से वि॰ सं॰ १३७० में खंभात में **शब्दानुशासनवृत्ति** की प्रतिलिपि की गयी)
  - रत्नप्रभसूरि
  - मुनिशेखरसूरि
  - धर्मदेवसूरि
  - ज्ञानचन्द्रसूरि
  - अभयसिंहसूरि
  - जयतिलकसूरि (रचनाकार)
    - रत्नसागरसूरि — बृहद्तपागच्छ -रत्नाकरगच्छ भृगुकच्छीय- शाखा प्रारम्भ
    - धर्मशेखरसूरि
    - रत्नसिंहसूरि — बृहद्तपागच्छ मुख्यशाखा
    - जयशेखरसूरि
      - जिनरत्नसूरि
    - माणिक्यसूरि

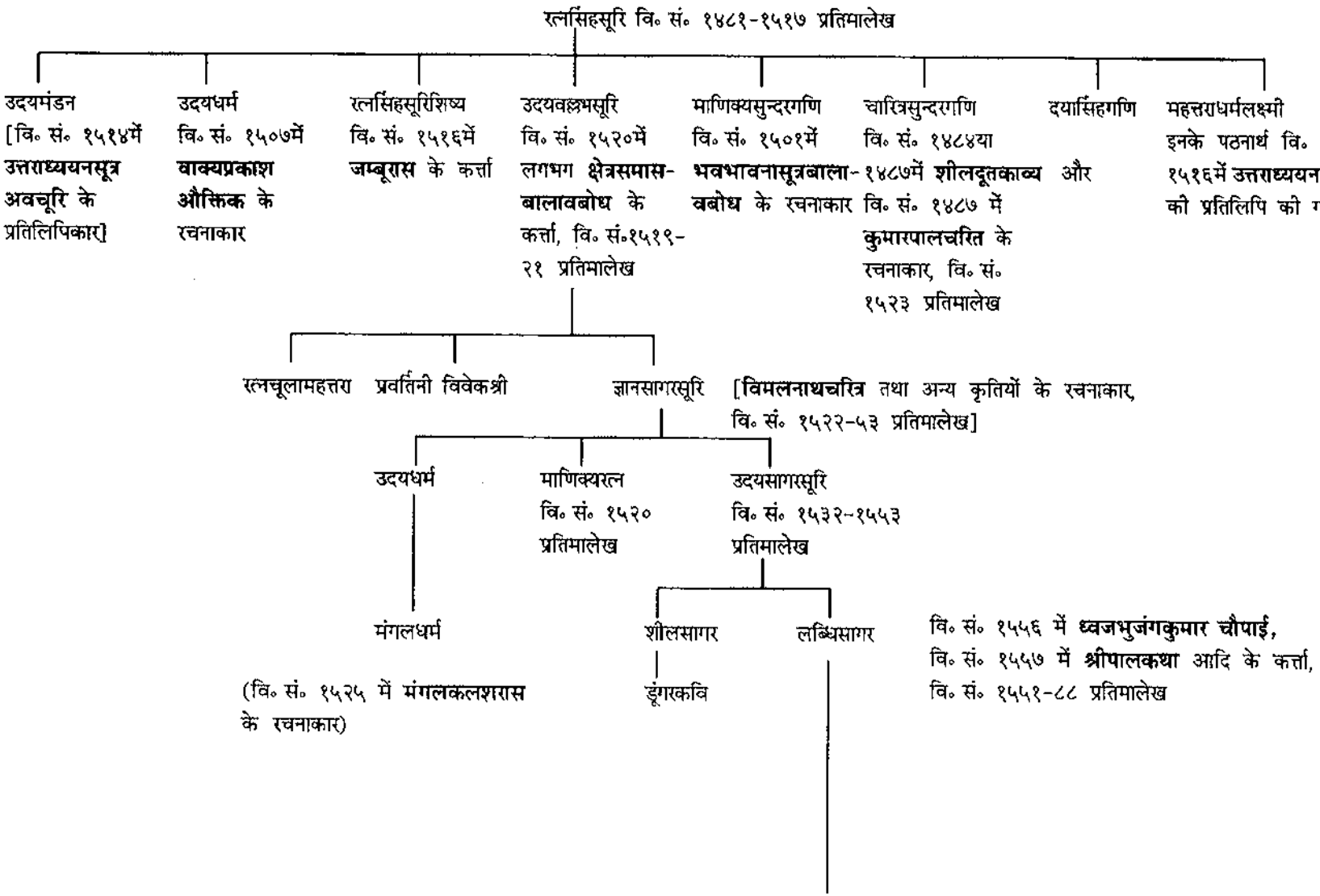

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ सूची :

१. "बृहद्पौषालिकपट्टावली" संपा॰ मुनि जिनविजय, **विविधगच्छीयपट्टावलीसंग्रह,** सिंघीजैनग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ५३, मुम्बई १९६१ ई॰, पृष्ठ २४.

२. "बृहद्पौषालिकपट्टावली", वही, पृष्ठ १३-३६, तथा संपा॰ मुनि कल्याणविजय, **पट्टावलीपरागसंग्रह,** जालोर १९६६ ई॰, पृष्ठ १७४-१८१ : एवं मोहनलाल दलीचंद देसाई, **जैनगूर्जरकविओ** भाग ९, नवीनसंस्करण, संपा॰ जयन्त कोठारी, मुम्बई १९९७ ई॰, पृष्ठ ७४-८५.

३. द्रष्टव्य देवेन्द्रसूरिकृत **श्राद्धदिनकृत्य** की प्रशस्ति

श्लोक ९.११

मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त, पृष्ठ २३-२४.

४. C. D. Dalal, *A Descriptive Catalogue of Palm Leaf Mss in the Jaina Bhandars at Pattan,* G.O. S. No. 76, Baroda 1937, p. 354-56.

५. देखें संदर्भक्रमांक २.

६. मुनि जिनविजय, पूर्वोक्त, पृष्ठ २३.

७. जीवनचंद साकरचंद झवेरी, संग्राहक और संशोधक-**आनन्दकाव्यमहोदधि,** भाग ६, श्री देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धारे, ग्रन्थांक ४३, मुम्बई ई॰ स॰, १९१८, "प्रस्तावना," श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृष्ठ १०.

८. हीरालाल रसिकलाल कापड़िया, **जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास,** भाग २, खंड १, श्री मुक्तिकमल जैनमोहनमाला, ग्रन्थांक ६४, बडोदरा १९६८ ई॰ स॰, पृष्ठ ३५६-५७. रत्नाकरसूरि के उपदेश से वि॰ सं॰ १३७० / ई॰ स॰ १३१४ में स्तम्भतीर्थ में हेमचन्द्रकृत शब्दानुशासन की प्रतिलिपि की गयी ।

P. Peterson. *A Fifth Report of Operation in Search of Sanskrit Mss in the Bombay Circle,* April 1892—March 1895, p. 110.

१०. Vidhatri Vora, Ed. *Catalogue of Gujarati Manuscripts : Muni Shree Punya Vijayji's Collection.* L. D. Series No. 71, Ahmedabad 1978 A. D. p. 166.

११. P. Peterson, Ibid, Vol 5, No. 51.

१२. Ibid., Vol 5, No. 396.

१३. वृद्धतपागच्छ / रत्नाकरगच्छ का इसी लेख के साथ स्वतंत्र रूप से विवरण दिया गया है ।

१४. जिनरत्नसूरि की शिष्य परम्परा का इसी लेख के साथ वर्णन किया गया है ।

१५. मोहनलाल दलीचंद देसाई, **जैनगूर्जरकविओ** भाग १, नवीनसंस्करण, संपा॰, डॉ. जयन्त कोठारी, मुम्बई १९८६ ई॰ स॰, पृष्ठ ८५ और आगे.

१६. A. P. Shah, Ed. *Catalogue of Sanskrit & Prakrit Mss : Muni Shree Punya Vijayji's Collection,* Part I, L. D. Series No. 2 Ahmedabad 1963 A. D., No-991, p. 81.

१७. मोहनलाल दलीचंद देसाई, **जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास,** मुम्बई १९३१ ई॰ स॰, कंडिका ११९.

१८. **जैनगूर्जरकविओ,** पूर्वोक्त, भाग १, पृष्ठ ९८-१०१.

१९. अम्बालाल प्रेमचन्द शाह, **जैनतीर्थसर्वसंग्रह,** भाग १, खंड १, अहमदाबाद १९५३ ई॰ , पृष्ठ ११६-११८.

२०. विजयधर्मसूरि, संग्रा॰ **प्राचीनतीर्थमालासंग्रह,** भाग १, भावनगर वि॰ सं॰ १९७८, पृष्ठ ५६-५७.

२१. James Burges, *Antiquities of Kathiawad and Kuchh-,* Reprint Varanasi 1971 A. D., pp. 159-61.

२२. **जैनसाहित्यनो संक्षिप्त इतिहास,** कंडिका ६८१, ६८६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. **जैनगूर्जरकविओ,** पूर्वोक्त, भाग १, पृष्ठ ६२-६३.

मुनि कांतिसागर, **शत्रुंजयवैभव,** कुशल पुष्प ४, जयपुर १९९० ई० स०, पृष्ठ १८६.

२४. मुनि कांतिसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ १८७-८८.

२५. **जैनगूर्जरकविओ,** पूर्वोक्त, भाग १, पृष्ठ १२९-३०.

२६. त्रिपुटी महाराज, संपा० संग्राहक-**पट्टावलीसमुच्चय,** भाग २, श्री चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४४, अहमदाबाद १९५० ई० स०, पुरवणी, पृष्ठ २४०-४१.

२७. H. D. Velankar, *Jinaratnakosha,* Poona 1944 A. D., p. 350.

२८-२९ द्रष्टव्य-बृहद्पोषालिक शाखा के मुनिजनों द्वारा प्रतिष्ठापित जिनप्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों की विस्तृत सूची.

३०. Vidhatri Vora, Ibid., p. 850.

३१. **जैनसाहित्यनो संक्षिप्त इतिहास,** कंडिका ७५७, ७७५.

जैनगूर्जरकविओ, पूर्वोक्त, भाग १, पृष्ठ २१३.

३२. द्रष्टव्य-प्रतिमालेखों की विस्तृत सूची.

३३. A. P. Shah, Ibid., Part II, L. D. Series No. 5, Ahmedabad 1965 A. D. No. 6085, p. 390-91.

३४. **जैनगूर्जरकविओ,** भाग १, पृष्ठ २७४-७६.

३५. श्री विनयसागरजी के अनुसार यह प्रशस्ति संभवनाथ जिनालय गलियाकोट के एक चैत्यालय पर उत्कीर्ण है । उन्होंने इसकी वाचना दी है, जो इस प्रकार है :

॥ॐ॥ संवत् १६३७ वर्षे माह सुदि ५ सोने वागडदेशे राउल श्रीसहसमलजी विजयराज्ये श्रीकोटनगरवास्तव्य हुंबडज्ञातीय वृद्धशाखायां । गां० श्रीउदयसिंह सुत गां० नाभा सु० गां० दाखा सुत गां० आणंद भार्या दाडिमदे सुत गां० घीसकर भार्या कनकादे अमरी सुपराणदे रूपादे । सुपराणदे सुत गां० वीरू माऊ वीला भा० कनकादे सुत गां० घीसकरा भार्या कल्याणदे रूपा भार्या केसरदे गां० घीसकर वि । हेनीबाई रङ्गाबाई चगा । समस्त कुटुम्बश्रेयसे श्रीसंभवनाथचैत्यालये देवकुलिका कारिता । श्रीचन्द्रप्रभाबिंबं स्थापितं श्रीवृद्धतपागच्छे भट्टारिक श्रीधनरत्नसूरिभिस्तत्पट्टे भट्टारिक श्रीतेजरत्नसूरिभिस्तत्पट्टे भट्टारिक श्रीदेवसुन्दरसूरिभिः प्रतिष्ठितं । श्रेयसे । शुभंभवतु । यात्रा शुभंभवतु । श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री पं० विनयचारित्र पं० विमलरत्न पं० जयसिंह पं० वीसल चेला आणंदरत्न लिखितम् ॥ **प्रतिष्ठालेखसंग्रह,** जिनमणिमाला: चतुर्थमणि, कोटा १९५३ ई०, लेखांक १०३४.

॥ॐ॥ संवत् १६३७ वर्षे माह सुदि ५ वागडदेशे राउल श्रीसहसमलजी विजयराज्ये श्रीकोटनगरवास्तव्य हुंबडज्ञातीय वृद्धशाखायां गांधी.....श्रीपाल भ्रातृ गां० धीहर जयपाल भार्या सरूपदे सुत गांधी गांगा भार्या मेलादे ह० .....भार्या खीमदे सुत गांधी सांगा गांधी जेवंतया भार्या स० .....मदि सुत गांधी बल गांधी जेवंत भार्या भगादे सुत गांधी भारिमल्ल भार्या मिलापदे समन्तकुटुम्बयुतेन श्रेयसे श्रीसंभवनाथचैत्यालये देवकुलिका कारापिता श्रीवृद्धतपापक्षे भट्टारिक श्रीधनरत्नसूरिभिस्तत्पट्टे भ० श्रीतेजरत्नसूरिभिस्तत्पट्टे भ० श्रीदेवरत्नसूरिभिः प्रतिष्ठितं शुभंभवतु ॥ वही, लेखांक, १०३३.

॥संवत् १६३७ वर्षे फागुण सुदि ५ वुधे वागडदेशे राउलश्री सहसमल श्रीविजयराज्ये श्रीगिरपुरवास्तव्य हुंबडज्ञातीय वृद्धशाखीय मढासाआ जीवा भार्या जीवादे सुत गुढसीआ भार्या भाखणदे मू.....भार्या जूढिआ कुटुम्बयुतेन श्रीकोट नगरमध्ये श्रीसंभवनाथचैत्यालये देवकुलिकाकारीता मध्ये श्रीसुविधिनाथबिंबं स्वस्य श्रेयसेः श्रीवृद्धतपागच्छे भट्टारिक श्री..... भट्टारिक श्रीतेजरत्नसूरिभिस्तत्पट्टे भट्टारिक श्री ५ श्रीदेवसुन्दरसूरिभिः प्रतिष्ठित शुभंभवतु ॥ पं० विनयचारित्र पं० जयसिंह पं० ज्ञानरत्न पं० वीरत्न शि० आणंदरत्नेन लिखितं ॥ वही, लेखांक १०३२.

३६-३७. A. P. Shah, Ibid., Part I, No. 645, p. 51.

३८. **जैनगूर्जरकविओ,** भाग ३, पृष्ठ १०-१७, ३७३-७४.

३९. Vora, Ibid., p. 1.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. **जैनगूर्जरकविओ**, भाग ४, पृष्ठ १६९.

४१. मुनि जिनविजय, संग्रा॰ संपा॰, **जैन ऐतिहासिक गूर्जर काव्य संचय,** प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजी-जैन ऐतिहासिक ग्रन्थमाला, पुष्प ७, भावनगर १९२६ ई॰ स॰, पृष्ठ १-१३. रास सार, पृष्ठ १-५.

४२. वही, पृष्ठ १३.

४३. **जैनगूर्जरकविओ,** भाग ४, पृष्ठ १६३-६४.

४४. वही, भाग १, पृष्ठ ३७९-८०.

४५. Vora, Ibid., p. 93, 210, 702, 820, 837.

जैनगूर्जरकविओ, भाग २, पृष्ठ ९३-१११.

४६. Vora, Ibid., p. 315,

जैनगूर्जरकविओ, भाग २, पृष्ठ २३०.

४७. **जैनगूर्जरकविओ,** भाग १, पृष्ठ ३४५-४६.

४८. वही, भाग २, पृष्ठ ५३.

४९. मुनि कांतिसागर, पूर्वोक्त, पृष्ठ १३३-३४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org